(देश देशान्तरों में प्रचारित, सबसे सस्ता, उच्च कोटि का आध्यात्मिक-पत्र)

सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई ।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई ॥

र्षिक मूल्य १॥) सम्पादक—श्रीराम शर्मा । एक अङ्क ≈)।

र्ष ५ मथुरा, १ सितम्बर सन् १९४४ ई० अङ्क ९

मृत्यु का भय दूर कर दीजिए ।

मृत्यु से मनुष्य बहुत डरता है । इस डर के कारण की खोज करने पर प्रतीत होता है कि मनुष्य मृत्यु से नहीं वरन् अपने पापों के दुष्परिणामों से डरता है । देखा जाता है कि यदि मनुष्य को कहीं कष्ट या विपत्ति स्थान में जाना पड़े तो वह जाते समय बहुत डरता और व्याकुल होता है । मृत्यु से मनुष्य इसलिए घबराता है उसकी अन्तःचेतना ऐसा अनुभव करती है कि इस जीवन का मैंने जो दुरुपयोग किया है, उसके फल-रूप मरने के पश्चात मुझे दुर्गति में जाना पड़ेगा । जब कोई व्यक्ति वर्तमान की अपेक्षा अधिक अच्छी उन्नत सुख कर परिस्थित के लिए जाता है तो उसे जाते समय कुछ भी कष्ट नहीं होता वरन् प्रसन्नता होती है ।

जो लोग अपने जीवन को निरर्थक, अनुचित और अनुपयोगी कार्यों में खर्च कर रहे हैं वे लोग मृत्यु ी प्रकार डरते हैं जैसे बकरा कसाई खाने के दरवाजे में घुसता हुआ भावी पीड़ा की आशंका से डरता दि आप मृत्यु के भय से बचना चाहते हैं तो अपने जीवन का सदुपयोग करना, अपने कार्यक्रम को य बनाना आरम्भ कर दीजिए, ऐसा करने से आपकी अन्तःचेतना को यह विश्वास होने लगेगा कि ... मय नहीं वरन प्रकाश पूर्ण है । जिस क्षण यह विश्वास हृदय को हुआ उसी क्षण मृत्यु का ... एक मामूली बात समझता है और

मनुष्य को देवता बनाने वाली पुस्तकें

जो ज्ञान युगों के प्रयत्न से मिलता है उसे हम अनायास ही आपके सामने उपस्थित करते हैं।

यह बाजारू कितावें नहीं हैं, इनकी एक एक पंक्ति के पीछे गहरा अनुभव और अनुसंधान है। विनम्र शब्दों में हमारा दावा है कि इतना खोज पूर्ण अलभ्य साहित्य इतने स्वल्प मूल्य में अन्यत्र न मिल सकता।

(१) मैं क्या हूं मूल्य ।=)
(२) सूर्य चिकित्सा विज्ञान ।=)
(३) प्राण चिकित्सा विज्ञान ।=)
(४) पर काया प्रवेश ।=)
(५) स्वस्थ और सुन्दर बनने की अद्भुत विद्या ।=)
(६) मानवीय विद्युत के चमत्कार ।=)
(७) स्वर योग से दिव्य ज्ञान ।=)
(८) भोग में योग ।=)
(९) बुद्धि बढ़ाने के उपाय ।=)
(१०) धनवान बनने के गुप्त रहस्य ।=)
(११) पुत्र या पुत्री उत्पन्न करने की विधि ।=)
(१२) वशीकरण की सच्ची सिद्धि ।=)
(१३) मरने के बाद हमारा क्या होता है ।=)
(१४) जीव जन्तुओं की बोली समझना ।=)
(१५) ईश्वर कौन है ? कहां है ? कैसा है ? ।=)
(१६) क्या धर्म ? क्या अधर्म ? ।=)
(१७) गहना कर्मणो गतिः ।=)
(१८) जीवन की गूढ़ गुत्थियों पर तात्विक प्रकाश ।=)
(१९) पंचाध्यायी (अजिल्द) ॥-)
(२०) शक्ति संचय के पथ पर
(२१) आत्म गौरव की साधना
(२२) प्रतिष्ठा का उच्च सोपान
(२३) मित्र भाव बढ़ाने की कला
(२४) आन्तरिक उल्लास का विकाश
(२५) आगे बढ़ने की तैयारी
(२६) अध्यात्म धर्म का अवलम्बन
(२७) ब्रह्म विद्या का रहस्योद्घाटन
(२८) ज्ञान योग, कर्म योग, भक्ति योग
(२९) यम-नियम
(३०) आसन और प्राणायाम
(३१) प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि
(३२) तुलसी के अमृतोपम गुण
(३३) आकृति देखकर मनुष्य की पहिचान
(३४) मैस्मरेजम की अनुभव पूर्ण शिक्षा
(३५) ईश्वर और स्वर्ग प्राप्ति का सच्चा म
(३६) हस्त रेखा विज्ञान
(३७) विवेक सतसई
(३८) संजीवन विद्या

(१) जनवरी सन् ४४ का मेस्मरेजम अङ्क बिल्कुल समाप्त होगया है। किन्तु उसकी अत मांग आने के कारण उसे पुस्तकाकार में छपाया है। इसका नाम "मैस्मरेजम की अनुभव पूर्ण शि है। जिन सज्जनों के पास मेस्मरेजम अङ्क है उनको उपरोक्त पुस्तक की आवश्यकता नहीं है।

(२) कमीशन देना कतई बन्द है। इस लिये इसके लिये लिखा पढ़ी करना बिलकुल व्य हां, आठ या इससे अधिक पुस्तकें लेने पर डाक खर्च हम अपना लगा देते हैं। आठ से कम पुस्तकों पर डाक खर्च ग्राहक के जिम्मे है।

अखण्ड ज्योति !

उतर स्वर्गसे भूमंडल पर, सत् की अमर ज्योति आती है
वेणु बजाती सत्य-प्रेम की, सुमधुर न्याय गान गाती है

मथुरा १ सितम्बर सन् १९४४ ई०

पुण्य-सहयोग ।

जोवन को आत्मोन्नति में लगाना चाहिए साथ ही परमार्थ परोपकार के लिए भी प्रयत्न करना चाहिए। शरीर की भूख बुझाने के लिए धन,सम्पत्ति का, सुख सामिग्री का प्राप्त करना आवश्यक है, इसी प्रकार आत्मा की भूख बुझाने के लिए पुण्य, परोपकार, धर्म, दया, दान आदि कार्यों का करना उचित है। हर मनुष्य दोनों प्रकार की अपनी भूखें बुझाने के लिए अपनी समझ और परिस्थितियों के अनुसार प्रयत्न करता है।

परन्तु सब लोगों के लिए यह सुलभ नहीं है कि भौतिक सम्पदाओं की भांति आत्मिक सम्पदाऐं कमाने में दिलचस्पी के साथ जुट सकें। बहुत से आदमी ऐसी परिस्थियों में पड़े हुए हैं कि उन्हें करीब करीब सारा समय अपनी आर्थिक और निजी समस्याऐं सुलझाने में लगा रहना पड़ता है। अपनी नौकरी या व्यापार में इतनी शक्ति उन्हें खर्च करनी पड़ती है कि सारा महत्वपूर्ण समय उसी में चला जाता है। जो थोड़े बहुत क्षण बचते हैं वे थकान के होते हैं उस थकी हुई दशा में परमार्थ का कुछ महत्व पूर्ण कार्य नहीं हो सकता।

सेवा, परोपकार आदि कार्यों के लिए एक विशेष प्रकार की योग्यता भी आवश्यक होती है जो कि सब किसी में नहीं पाई जाती। यदि किसी स्थान पर बीमारी फैले तो उसे निवारण करने के लिए एक कुशल वैद्य जितना काम कर सकता है उतना कार्य चित्रकार द्वारा नहीं हो सकता, यदि नदी में कुछ आदमी डब रहे हों तो उसे निकालने के लिए एक मल्लाह जितना कार्य कर सकता है उतना तैरने से अनिभिज्ञ डाक्टर साहब द्वारा नहीं हो सकता। धर्म चर्चा जितनी पंडित जी कर सकते हैं उतनी लाला जी से नहीं हो सकती। बदमाशों का मुँह तोड़ने में एक शूरबीर जितना समर्थ है उतना काम मुन्शी जी से नहीं हो सकता। वकील के काम को लुहार और लुहार के काम को वकील ठीक प्रकार से नहीं कर सकता। कहने का तात्पर्य यह है कि हर काम को हर आदमी नहीं कर सकता। इसी प्रकार सच्ची सेवा और सच्चा परोपकार कर सकने की स्थिति में हर मनुष्य नहीं होता।

इस कठिनाई के होते हुए भी एक मार्ग ऐसा है जिसके द्वारा हर मनुष्य हर प्रकार की योग्यताऐं अपने लिए सुलभ कर सकता है और ऊँची से ऊँची योग्यताओं का बढ़िया से बढ़िया फल पा सकता है। यह मार्ग है "परिश्रम का बदलाव"। जिस मनुष्य में जो योग्यता है वह अपनी योग्यता से दूसरे का काम करे और दूसरा उसका काम कर दे। जैसे आप कानूनी दाव पेच नहीं जानते वकालत में आपका ज्ञान नहीं है तो अपनी शक्ति और सामर्थ्य मूल्य-पैसा वकील साहब को दे दीजिए बदले में वकील साहब अपनी योग्यता और समय आपको दे देंगे इस प्रकार कानूनी योग्यता न होते हुए भी आप आसानी से कानून सम्बन्धी बड़े से बड़ा लाभ प्राप्त कर सकते हैं। यदि वकील से सहयोग न करके स्वयं खुद ही आप अपने पैरों पर खड़े होना चाहते तो कई वर्ष कानूनी ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त तब कहीं उतनी बातें समझने के योग्य

होते जितनी कि वकील ने जरा सी देर में समझादी। इसी प्रकार हलवाई को पैसा देकर मिठाई तुरन्त ही आसानी से प्राप्त कर सकते हैं किन्तु यदि स्वयं मिठाई बनाने बैठें तो उसके लिए बहुत समय तक शिक्षा प्राप्त करने की आवश्यकता है तब कहीं अच्छी मिठाई मिल सकती है। कपड़ा, मकान, भोजन, सवारी, मनोरंजन, आदि को स्वयं निर्माण करना हर आदमी के लिए सुलभ नहीं है पर यह सुलभ है कि बदलाव के सिद्धान्त के अनुसार उन वस्तुओं को बिना किसी कठिनाई के मनोवांछित रूप से प्राप्त कर ले।

पैसा—धातु का टुकड़ा मात्र नहीं है। वह मनुष्य की योग्यता, सामर्थ्य, समय, परिश्रम जैसी सूक्ष्म शक्तियों का स्थूल रूप है। एक आदमी आठ घंटे परिश्रम करके एक रुपया कमाता है। यह एक रुपया और कुछ नहीं उसके एक दिन के समय और श्रम का स्थूल रूप है। यदि वह इस एक रुपये को किसी वैद्य को देता है और कहता है कि इसके बदले में आप अपना समय दे दीजिए और समय को बीमार लोगों की निस्वार्थ सेवा में लगा दीजिए। वैद्य इस प्रस्ताव पर सहमत हो जाता है और मजूर का एक रुपया अपने लिए रख लेता है और बदले में अपना एक दिन बीमारों की चिकित्सा में लगा देता है तो यह वैद्य द्वारा बीमारों की जो सेवा हुई है उसके फल का अधिकारी वह मजदूर है। जिसने दिन भर मेहनत करके एक रुपया कमाया और उसके बदले में वैद्य की योग्यता लेकर बीमारों की सेवा की।

जो व्यक्ति धन उपार्जन में दिलचस्पी लेते हैं जिन्हें जीवन भर कार्य करते रहने के कारण उसी क्षेत्र में योग्यता प्राप्त है वे अपना नियत कार्य करते हुए भी, धर्म, पुण्य, सेवा, परोपकार का फल बदलाव का सिद्धान्त प्रयोग करके आसानी से प्राप्त कर सकते हैं। अपने समय का मूल्य—पैसा—वे किसी कार्य में लगाते हैं, कार्यकर्ताओं को भोजन देते हैं, उस कार्य के उपयुक्त साधन जुटाने की व्यवस्था करते हैं यह सब उनके पैसे की अथवा यों कहिए कि समय एवं शक्ति की ही तो करामात है। मान लीजिए कि आप एक पाठशाला खुलवाते हैं उसमें स्वयं अध्यापक का, और चपरासी आदि का काम नहीं करते वरन् अपने पैसे से अध्यापक और चपरासी नियुक्त कर देते हैं तो भी वास्तव में उन अध्यापक और चपरासी का काम आप स्वयं ही कर रहे हैं। यदि उन दोनों को वेतन न मिलता तो भला वे किस प्रकार उस कार्य को करते? वेतन देने के अर्थ हैं स्वयं कार्य करना—उस कार्य के पुण्य फल को स्वयं प्राप्त करना।

हर चीज का अपना अपना महत्व है। एक लोक सेवी मनुष्य धन कमाने में पूरा भोंदू हो सकता है, एक व्यापारी ज्ञान के पसार में अयोग्य ठहर सकता है, परन्तु वे दोनों जब अपनी योग्यताओं का बदलाव करते हैं तो वैसा ही आश्चर्य जनक फल उत्पन्न होता है जैसा कि तांबे और जस्त के मिलने से विद्युत प्रवाह बहने का कार्य होने लगता है। राणा प्रताप जब बन में भूखे प्यासे निराश घूम रहे थे तब उनके सामने चारों ओर अँधेरा था, एक दो बहादुर सेनापतियों का सहयोग उस दशा में उन्हें मिल जाता तो भी वे उस समय शायद कोई बहुत बड़ा काम नहीं कर सकते थे। परन्तु उसी समय एक वृद्ध पुरुष, लटे दुबले, कमर जिनकी झुक रही थी, लाठी टेकते टेकते राणा प्रताप के पास पहुंचते हैं और अपनी वह शक्ति उनके हवाले करते हैं जो पचासों सेनापत्तियों से अधिक थी। यह वृद्ध पुरुष स्वनामधन्य श्री० भामाशाह थे उन्होंने अपनी जीवन भर की कमाई हुई सम्पत्ति राजा प्रताप को हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए लड़ने के निमित्त दे डाली। इस पैसे से राणा-प्रताप का बल लाखों गुना बढ़ गया उन्होंने तुरन्त एक अच्छी सेना बनाली और एक नवीन आशा के साथ धर्म संग्राम आरम्भ कर दिया। क्या श्री० भामाशाह का पुण्य, जीवनभर धर्म युद्ध करने वाले

सेनापति से कम माना जायगा ? एक धर्मवीर अपने समय और सामर्थ्य को युद्ध में लगा कर धर्म की रक्षा करता है, एक दान वीर जीवन भर अपने समय और सामर्थ्य को लगाकर धन कमाता और उस धन को धर्म के लिए दे डालता है, दोनों का कार्य त्याग पूर्ण है, धर्म मय है, पुण्य मय है। दोनों ही एक स्थान पर खड़े हैं, दोनों ही प्रशंसनीय हैं दोनों ही पूज्य हैं। एक सोना था तो दूसरा सुगन्ध हुआ। सोना और सुगन्ध मिलकर एक दवी तत्व कुन्दन बन जाता है।

जो शरीर और बुद्धि द्वारा जनता जनार्दन की, देश जाति की सेवा कर सकते हैं वे उसके द्वारा करें जो धन उपार्जन करते हैं वे अपने धन को उन सेवाभावियों के द्वारा सत्कार्यों के लिए लगावें,जिस प्रकार सिर और धड़ के सहयोग से जीवन कायम रहता है उसी प्रकार ज्ञान और धन के संयुक्त सम्मिलन द्वारा एक एक ब्रह्म शक्ति का आविर्भाव होता है जो अचूक, अमोघ और आश्चर्यजनक फल को उत्पन्न करती है और कर सकती है। ज्ञान और कर्म अलग अलग रह कर अकेले हैं, निर्बल हैं, सूने हैं निरर्थक हैं। शरीर और जीव अलग अलग रहें तो उनका कुछ अस्तित्व नहीं, रज और वीर्य की प्रथकता में कुछ विचित्रता नहीं किन्तु जब दो प्रचण्ड सत्ताओं का सम्मिलन होता है तो एक अद्भुत तत्व बनता है। धन और ज्ञान जब तक अलग अलग हैं तब तक दोनों ही निरर्थक हैं परन्तु जब दोनों मिलते हैं और उनका सम्मिलित प्रयत्न सत्य के, धर्म के, बल के, उत्थान में लगता है तो उसके द्वारा उस भूमि की उस क्षेत्र की काया पलट होजाती है उस भूमि पर स्वर्ग उतर आता है।

धनियो ! आप ऋषियों का सहयोग करो, इससे आपका धन असंख्य गुना पुण्य लेकर चक्रवृद्धि व्याज के रूप में वापिस लौटेगा। ऋषियो ! आप धनियों का सहयोग करो इससे आपकी शक्ति अनेक गुनी बढ़ जायगी और इससे आपकी परामार्थ भावनाओं को सफल बनाने का स्वर्ण सुयोग प्राप्त होगा। दोनों के सहयोग से आप दोनों के हिस्से में जितना पुण्य और यश आवेगा वह अलग अलग कार्य करने की अपेक्षा बहुत अधिक होगा। जड़ वस्तुऐं एक और एक मिलकर दो होती हैं परन्तु चैतन्य प्राणी एक और मिल कर ग्यारह हो जाते हैं। ऋषि और धनी दोनों मिलकर काम करें तो थोड़े ही परिश्रम से नर नारायण की सच्ची पूजा का बहुत बड़ा अनुष्ठान होता है और हो सकता है। अखंड ज्योति इस एकता के लिए हर एक विवेकशील अन्तःकरण से प्रार्थना करती है।

अपने व्यक्तित्व का गौरव अक्षय बनाए रहो। चुलबुलापन और बकवाद तुम्हारे व्यक्तित्व के नाश के कारण हो सकते हैं।

× × ×

मनुष्य संसार का अपनी इच्छा और रुचि के अनुसार पुनःनिर्माण नहीं कर सकता। उसे ही सांसारिक परिस्थिति के अनुकूल अपने आपको बना लेना होता है। संसार सार्वजनिक आवश्यकताओं के लिये बना है। व्यक्ति को अपनी आकांक्षाऐं सार्वजनिक आवश्कताओं में अन्तर्भूत कर देना चाहिए।

× × ×

किसी के हृदय की बात को वास्तविक रूप से समझ लेना ही उसका मूल्य अंकित करना है।

× × ×

दूर से भोंकने वाला कुत्ता काटता नहीं।

× × ×

सिसोरो के अनुसार भी चुप रहना संलाप कला में एक विशिष्ट स्थान रखता है। उसका कहना है कि चुप रहना एक कला ही नहीं वाक् प्रवीणता भी है।

× × ×

कल्याण का मार्ग ।

आम तौर से समझा जाता है, कि 'हमें जो भी काम करना चाहिए, अपने फायदे के लिये करना चाहिए। दूसरों के फ़ायदे के लिए हम क्यों सर खपावें।' बात ठीक है, अपने घर की आग बुझाकर तब पड़ौसी के घर की हिफाजत की जाती है। मेरी दाढ़ी जल रही हो और दूसरे की भी जलने लगे, तो स्वभावतः मैं पहले अपनी बुझाऊंगा तब दूसरे की ओर ध्यान दूंगा। नेकी, भलाई, परोपकारिता आदि अच्छी वस्तु हैं, परन्तु एक व्यवहारवादी व्यक्ति तो अच्छी चीजें अपने लिए लेना चाहता है। यह नेकी अच्छी वस्तु है तो निस्संदेह उसे पहले अपने लिए लेना होगा। स्वाभाविक स्वार्थ-बुद्धि का यही तकाज़ा है, कि हम अपने साथ नेकी करें, अपनी भलाई सोंचें, अपने उपकार में प्रवृत्त हों और अपने कल्याण का मार्ग अवलम्बन करें।

एक ही वस्तु प्रयोग भेद से भिन्न प्रकार के परिणाम उपस्थित कर सकती है, सुई कपड़ा सीने का एक अच्छा साधन है, किन्तु यदि उसका दुरुपयोग करके शरीर के किसी हिस्से में चुभो दी जाय तो वह कष्ट-दायक बन जायगी। भोजन और जल जैसे जीवनोपयोगी पदार्थ यदि अनियमिता के साथ सेवन किये जाँय, तो नाना प्रकार के रोगों के कारण बन सकते हैं। आत्म कल्याण एक अत्यन्त उपयोगी जीवन तत्व है, किन्तु जब इसका सदुपयोग होता है, तब परमार्थ कहा जाता है और दुरुपयोग की अवस्था में वही स्वार्थ के घृणित नाम से संबोधन किया जाता है। वास्तव में स्वार्थ और परमार्थ एक ही वस्तु है पर एक को आदरणीय दूसरे को तिरष्कृत इसलिए कहा जाता है, कि एक के उपयोग में काम लिया गया है और दूसरा मूर्खता पूर्ण है।

मूर्ख पक्षी दाने के लोभ में फँस जाते हैं और चतुर पक्षी चारों ओर देखकर चोंच खोलते हैं, जैसे उन्हें कुछ खटका प्रतीत हुआ वैसे ही वे उड़ जाते हैं। इस प्रकार चतुर पक्षी तो बच जाते हैं और मूर्ख पक्षी बहेलिये के जाल में फँसकर कष्ट उठाते हैं। स्वार्थ और परमार्थ में उपरोक्त दो पक्षियों की विचार-धारा के समान ही अन्तर है। स्वार्थी मनुष्य आज के लाभ को प्रधानता देता है, उसकी दृष्टि बहुत ही संकुचित और विचार धारा बहुत ही सीमित होती है। आज के, आँखों से दिखाई देने वाले, लाभ ही उसकी दृष्टि में लाभ है. किन्तु बुद्धिमान, चतुर और परमार्थी भविष्य के परिणामों का ध्यान रखकर आज का काम करता है। किसान परमार्थी है, वह अच्छी फसल पाने के लिए आज अपने बीज को खुशी खुशी खेत में बखेर देता है। निश्चय ही आप उस मूर्ख पक्षी के कार्य की सराहना नहीं करेंगे, जिसकी दृष्टि सिर्फ सामने वाले दानें तक ही थी और जो आगे रखे हुए जाल की ओर लोभ के मारे ध्यान नहीं देता था. वह अल्पज्ञ पक्षी कुछ थोड़े से क्षणों तक अहंकार में फूला रह सकता है और उन दानों के लाभ से अपने को सौभाग्यशाली गिन सकता है, परन्तु अन्त में उसे अपनी भूल पर पछताना पड़ेगा। बुद्धिमान पक्षी जाल के खतरे और दानों के लाभ की तुलना करता है और भविष्य के परिणामों पर विचार करता है, इस प्रकार वह सामने रखे हुए दानों को बिना किसी हिच-किचाहट के जहां का तहां पड़ा छोड़कर उड़ जाता है।

नेकी का—आत्म कल्याण का—मार्ग अवलम्बन करने वाले व्यक्ति के सामने इसी तरह की समस्या आती है। एक ओर तो स्वार्थ भोग विलास, इन्द्रिय-लिप्सा, तृष्णा, लालसा, संग्रह, परिग्रह का प्रलोभन होता है जिनमें लिप्त हो जाने पर भविष्य अन्धकारमय बन जाता है, दूसरी ओर परमार्थ, त्याग, दया, प्रेम, करुणा, सहानुभूति का मार्ग है, प्रत्यक्ष में यह रास्ता सूखा, कष्ट—साध्य और घाटे का प्रतीत होता है, किन्तु अन्त में उसका परिणाम बहुत ही आशातीत तथा आनन्ददायक होता है।

जाल के ऊपर पड़े हुए दानों को छोड़कर जो पक्षी उड़ गया था, भले ही वह किसी की दृष्टि से घाटे में रहा हो पर जब हरे भरे पेड़ की ऊंची डाली पर बैठकर वह प्रसन्नता के मधुर गीत गाता है, तब वह अनुभव करता है. कि जाल के दानों को छोड़कर भी मैं घाटे में नहीं रहा। किसान जब फसल के समय अपना भरा हुआ कोष देखता है तो उसे प्रतीत होता है. कि खेत में जो बीज मैंने बखेरा था वह व्यर्थ नहीं गया। उस समय घाटा प्रतीत होता था, पर आज तो जितना दिया गया था, उससे हजार गुना वापिस लौट आया।

आप अपनी नेकी के मार्ग पर दृढ़ता से चलते रहिए। अपने वास्तविक कल्याण को दूर-दृष्टि के साथ, विशाल दृष्टिकोण के साथ देखिए। दूसरे लोग, इस दुनियां में, बहुत पैसा इकट्ठा करते हुए, विषय भोगों में लगे हुए इन्द्रिय तृप्ति में परायण एवं लालसाओं को पूरा करने में लगे हुए आपको दिखाई पड़ेंगे। यह लोग बाहर से ठाठ-बाठ का और तड़क भड़क का जीवन व्यतीत करते हुए प्रतीत होंगे। आप इनके वैभव को देखकर भूलकर भी ललचाइये मत, क्योंकि यह विनाश के पथ पर दौड़ रहे हैं। तृष्णा, लालसा और अनीति की पाप वासनायें उनके भीतर लुहार की भट्टी की तरह जल रही है, एक दिन यह भीतरी ज्वाला बाहर आवेगी और उन्हें जड़-मूल से नष्ट कर देगी। आप भविष्य के आनन्दमय परिणामों के लिए आज के कठोर, रूखे काम करना आरम्भ कर दीजिये। चतुर किसान की तरह अपनी मानसिक, शारीरिक और भौतिक शक्तियों को ईश्वर के संसार रूपी खेत की उपजाऊ मिट्टी में बखेर दीजिए। लोक हित के, परमार्थ के, धर्म के, कार्यों में सब कुछ छोड़कर लग जाइए। अपनी योग्यताओं का बीज परमार्थ के खेत में बोइए और फ़सल आने तक निष्ठा और विश्वास के साथ अपने स्वेद बिन्दुओं से उसे सींचते रहिए। सचमुच एक दिन आप ही बुद्धिमान ठहराये जायेंगे और स्वीकार किया जायगा, कि आप ही वे जोखों का व्यापार करने वाले सच्चे व्यापारी हैं।

आप अपनी आत्मा के गौरव को स्मरण कीजिए, अपनी महानता का अनुभव कीजिए और केवल उन्हीं कार्यों में हाथ डालिए जो आपके पद के अनुकूल हों। सम्राटों के सम्राट परमात्मा का उत्तराधिकारी राजकुमार मनुष्य, वस्तुतः महान् है। महानता का गौरव इसी में है, कि अपनी मर्यादा पर स्थिर रहा जाय। चकवा प्यासा मर जाता है पर स्वांति बूंद के अभाव में गन्दे नाले का पानी नहीं पीता, हंस अपनी मर्यादा की रक्षा करता है, मछली अपनी मर्यादा की रक्षा करती है, हंस मोती न मिलने पर भूखों मरजाता है और मछली जलके अभाव में जीवित नहीं रहती। आपभी अपनी गौरव मर्यादा से नीचे मत गिरिये। धर्ममय उत्तमोत्तम कार्यों करने के लिए आपका अवतार इस पृथ्वी पर हुआ है। परमात्मा का राजकुमार-आत्मा-अपने पिता की राज-सत्ता को सुव्यवस्थित करने आया है। सरकारी हाकिम देहातों में दौरा करने के लिए भेजे जाते हैं, ताकि वे सम्राट् का शासन सुव्यवस्थित रखने में सहायता करें। आपको इसलिए यहां भेजा गया है, कि ईश्वर की इच्छा और आज्ञाओं का सन्देश विश्व के कौने कौने में गुंजित करे और अधर्म को हटाकर धर्म की स्थापना करें। आप अपने पद और जिम्मेदारी का स्मरण कीजिए और इसी की मर्यादा की रक्षा के निमित्त कार्य करना आरम्भ कर दीजिए, आपके लिये नेकी और भलाई का यह बहुत ही उत्तम मार्ग हो सकता है।

अच्छी तरह इस बात को हृदयंगम कर लीजिए जीवन का सच्चा लाभ इसी में है कि आप आत्म कल्याण के, नेकी और भलाई के, मार्ग पर चलें। अपने आचरणों को सचाई और धर्म-निष्ठा से परिपूर्ण रखें एवं अन्तःकरण के किवाड़ों को सद्भाव एवं सद्विचारों के लिए खोल दें। कल्याणकारी पिता के हे कल्याणकारी पुत्र! उठो, परमात्मा का अवलम्बन ग्रहण करो और नेकी के मार्ग पर अग्रसर होजाओ। आपकी सच्ची भलाई इसी में है।

कामवासना का रूपान्तर ।

प्रोफेसर रामचरणजी महेन्द्र एम ए डी.लिट्(अमेरिका

इस तत्त्व का भली भाँति स्मरण रखिए कि जब तक 'काम' वासना पर विजय प्राप्त नहीं की जाती तब तक कोई भी महान् कार्य सम्पादन नहीं किया जा सकता, सांसारिक, धार्मिक, या दैविक कोई भी क्यों न हो । अर्जुन भगवान् कृष्ण से प्रश्न करते हैं कि महाराज पाप करने में अनेक घोर कष्ट हैं—यह जान कर भी मनुष्य किस प्रेरणा से पाप कर्म में प्रवृत्त होता है। उन्होंने उत्तर दिया—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम् ॥

अर्थात् हे अर्जुन ! काम क्रोध जो कि रजोगुण से उत्पन्न हुए हैं भय देने वाले हैं और इन्हीं से प्रत्येक पाप में प्रवृत्ति होती है । ये ही सब से बड़े शत्रु हैं । जहाँ तक हो सके इनके विनाश का उपाय करो।

जिस प्रकार अग्नि धुएँ से दर्पण मलीन हो जाता है और गर्भ के गन्दे पदार्थों से नवजात शिशु ढका हुआ होता है इसी प्रकार काम की कालिमा से यथार्थ आत्मज्ञान ढका हुआ रहता है।

इस शत्रु को विजय करने के अनेक उपाय बताये जाते हैं किन्तु लोग यह भूल जाते हैं कि इस प्रवृत्ति को जड़मूल से उखाड़ डालना संभव नहीं। अनेक महात्माओं ने प्रयत्न किये और वे असफल रहे। यह वासना नष्ट तो नहीं की जा सकती हाँ, इससे छुटकारा पाने का एक और उपाय है। वह है इस का रूपान्तर (Transmutation) कर देना। काम वासना का रुपान्तर का अर्थ स्पष्ट ही है। इसका अभिप्राय यह है कि काम की शक्ति का प्रवाह शारीरिक सम्पर्क के निंद्य मार्ग से रोक कर उसे निकलने का कोई अन्य मार्ग प्रदान कर देना। नदियों, झरनों, नालों के पानी का मार्ग अवरुद्ध कर लिया जाता है फिर उसे किसी नवीन क्षेत्र में प्रवाहित करके आश्चर्यजनक विद्युत् की उत्पत्ति की जाती है। इसी प्रकार काम वासना के तीव्र प्रवाह को क्षुद्र सांसारिक भोगविलास के संकीर्ण मार्ग से हटा कर एक ऐसे क्षेत्र में खोल देते हैं जिससे उसकी आश्चर्य जनक शक्ति से अनेक दुष्कर कार्य सम्पन्न हो सकते हैं।

कामशमन के उपायों में उसे एक नवीन उत्पादक क्षेत्र प्रदान कर देना सर्वोत्कृष्ट है। सांसारिक इच्छा पूर्ति के मार्ग को अवरुद्ध कर उसे किसी अन्यमार्ग से प्रकट होने का अवसर दीजिए। नवीन क्षेत्र पाने से इस वासना का कूड़ा करकट साफ़ हो जाता है और इसका परिष्कृत रूप अनेक आश्चर्यचकित करने वाले महान् कार्य कर दिखाता है। यह सामान्य व्यक्ति को अद्भुत प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति में परिणत कर देता है।

वह व्यक्ति धन्य है जिसने अपनी काम वासना (Sexenergy) को निकलने के लिए एक नवीन उत्पादक मार्ग प्रदान कर दिया है । इस शक्ति के प्रवाह का जिस क्षेत्र में लगायेगा उसी में चमत्कार उत्पन्न कर देगा। सेक्स शक्ति के रूपान्तर का अर्थ ही है कि ऐसा व्यक्ति एक ऐसी दशा की ओर उन्मुख होने लगा है जिस ओर उसकी विशेष रुझान है और जिसमें यह अपनी अद्भुत शक्तियों का परिचय भली भाँति दे सकता है। मनोवैज्ञानिक खोज के उपरान्त हम इस निर्णय पर पहुंचते हैं कि—

संसार को हिला डालने वाले व्यक्तियों में काम प्रवृत्ति विशेष रूप से उग्र (Developed) थी किन्तु उन्होंने इस प्रचंड शक्ति के प्रवाह को शारीरिक सम्पर्क के नाशक क्षेत्र से हटाकर एक नवीन क्षेत्र में उसका प्रवाह खोल दिया था। शक्ति के इस सागर ने उनकी आत्मा को नव शक्ति, नव धैर्य प्रदान किया था।

साहित्य, कला, वाणिज्य, शिल्पकारी, प्रसिद्धि

के प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में उन्हीं व्यक्तियों को प्रतिभा, समृद्धि या प्रसिद्धि (Recognition) प्राप्त हुई जिनकी शक्ति का उद्गम स्थान कोई स्त्री थी। उन्हें उस स्त्री ने विशेष उत्तेजना, उत्साह, साहस प्रदान किया तदुपरान्त उस प्रचंड शक्ति का प्रवाह शारीरिक सम्पर्क की संकीर्णता से हट कर एक कल्याणकारी क्षेत्र में प्रवाहित हो गया। इस शक्ति के रूपान्तर द्वारा ही वे बहुत ऊँचे चढ़ गये।

कवि शिरोमणि सूरदास को किसी सुन्दरी ने उत्तेजना (Stimules) प्रदान की; शक्ति के महासागर में प्रचंड तूफ़ान उठा; उन्होंने अपनी आंखें निकाल डाली और शक्ति को कृष्ण प्रेम के कल्याणकारी मार्ग में प्रवाहित कर दिया। इसी प्रकार कविश्रेष्ठ तुलसीदास जी अपनी प्रियतमा पर अत्यन्त अनुरक्त रहे; फिर एक दिन उन्हें "काम वासना का रूपान्तर" की शिक्षा प्राप्त हुई और वे महानता को प्राप्त हुए महात्मा बुद्ध का प्रारम्भिक जीवन शृङ्गारिक था। अनेक महर्षियों, तत्ववेत्ताओं, साहित्य के देवताओं को स्त्रियों ने महानता के लिए उत्तेजना प्रदान की है।

संसार का इतिहास उठा देखिए। बड़े नायकों बड़े राजनैतिकों, बड़े राजाओं सभी की काम वासना उदीप्त हुई और फिर उसका क्षेत्र परिवर्तित हो गया। जार्ज वाशिंगटन, शैक्सपीयर, एब्राहमलिंकन, इमरसन, रावर्टबर्न्स, टामस जैफरसन, औस्कर वाइल्ड, रोज़ेटी, एन्ड्रूजैकसन, इन सभी की जीवनियों में यही सत्य उपलब्ध होता है। नैपोलियन ने जब जौसेफ़ाइन (Josephine) से विवाह किया था तो वह अजेय बन गया था। उसी की उत्तेजना से वह एक के बाद अनेक विजय प्राप्त करता चला गया। जब उसकी शक्ति का वह उद्गम स्थान बन्द हुआ तो पतन भी प्रारम्भ हुआ और सैन्टहेलना में बड़ी पराजय हुई।

काम की शक्ति इतनी प्रबल है कि इसके आवेश में मनुष्य में अद्भुत परिवर्तन हो जाता है। मनुष्य की कल्पना तीव्र हो उठती है। उत्साह और आशा का संचार हो जाता है। संकल्प शक्ति में बल आता है आत्म निर्भरता की अभिवृद्धि हो उठती है। ऐसी शक्तियों का केन्द्र खुल जाता है जिनका मनुष्य को भान तक नहीं होता। सेक्स द्वारा उदीप्त कल्पना, आशा, आत्मनिर्भरता, संकल्प की सामूहिक शक्तियों का रूपान्तर किसी भी दिशा में आश्चर्य-जनक कार्य कर सकता है। इसके प्रवाह के बिल्कुल अवरुद्ध होने से मनुष्य कई मानसिक रोगों का शिकार बनता है और इस प्रवाह को उत्तम मार्ग प्रदान करने से संसार में साहित्य, कला, विज्ञान और समाज का निर्माण और उन्नति होती है। इस शक्ति के प्रवाह को, बिना किसी और मार्ग से निकाल, रोक देने में उतना ही भय है जितना कि वेग से बहते हुए पर्वतीय सोते को बांध देने में। यदि उसके निमित्त कोई नवीन मार्ग न निकाला जाय तो वह सारे बांध को तोड़ फोड़ सकता है।

स्वर्ग और पृथ्वी में बहुत भेद नहीं है। श्रम और प्रेम दोनों साथ हों तो स्वर्ग बन जाता है। ये दोनों पृथक हो जाँय तब पृथ्वी बनती है।

× × ×

मुझे दो वस्तुएँ सबसे प्यारी है—श्रम और दुःख! दुःख के बिना हृदय निर्मल नहीं होता; श्रम के बिना मनुष्यत्व को नहीं समझा जा सकता।

× × ×

चार बातें नहीं भूलनी चाहिये (१) बूढ़ों का आदर करना (२) छोटों को सलाह देना (३) बुद्धिमानों से सलाह लेना (४) मूर्खों से न उलझना।

× × ×

यदि मनुष्य सीखना चाहे तो उसकी प्रत्येक भूल उसे कुछ न कुछ सिखा देती है।

× × ×

महापुरुष बनने का मार्ग।

सुकरात से लगा कर ईसा मसीह तक और ईसा मसीह से लेकर आज जितने भी महात्मा, महापुरुष हुए हैं उनने एक काम निश्चित रूप से किया है। वह कार्य है 'अपने सिद्धान्तों के लिए आत्म बलिदान'। जो व्यक्ति अपने अन्तःकरण की पुकार के साथ अपने शरीर और मन को सुनिश्चित रूप से लगा देता है वही 'सफल जीवन' कहा जाता है। महा पुरुषों की दिवंगत आत्माऐं आज भी पुकार पुकार कर अपने अनुभव हमें सुनाती हैं। वे कहती हैं कि "हम भी अपने जीवन को प्यार करते थे, हमें भी अपने बाल बच्चों और कुटुम्बियों का मोह था। हमें भी इन्द्रिय बासनाऐं सताती थीं, लोभ और लालच हमारे सामने भी थे, पग पग पर संकल्प विकल्प हमारे मनमें भी उठते थे, परन्तु इन सब बाधाओं का हमने दृढ़ता पूर्वक मुकाबिला किया। अपने अन्तःकरण की पुकार के सामने हमने किसी भी अन्य वस्तु की परवाह नहीं की। एक से एक बड़ी कठिनाई को यहाँ तक कि मृत्यु को भी अपनी अन्तः प्रेरणा के सामने तुच्छ समझा।" यह महापुरुषों की विचार धारा है। जिसने इस रीति का अवलम्बन किया है इस दुनियां में वही महापुरुष बना है।

आसान जीवन को ही मामूलीतौर से सब लोग पसंद करते हैं। अच्छा खाना और मौज से रहना यह किसी को बुरा नहीं लगता। मामूली प्रलोभनों में भी इतना आकर्षण होता है कि उन्हें छोड़ने की मनुष्य को हिम्मत नहीं पड़ती। लाखों करोड़ों आदमी ऐसा ही आसान जीवन विताने की इच्छा करते हैं। फिर भी यह ध्यान रखना चाहिए कि यह आसान कहा जाने वाला जीवन वास्तव में आसान नहीं है। यह भी उतना ही कठिन और कष्ट मय है जितना कि महापुरुषों का जीवन। अकाल, बीमारी, चोट, दुर्घटना, विरह, विछोह, घाटा, चोरी, आदि नाना प्रकार के कष्ट इस आसान जीवन में भी आते हैं। न चाहते हुए भी यह विपत्तियां सिर के ऊपर आ ही धमकती हैं।

मौज करने की लालसा से जीवन को कीट पतंगों की भाँति निरुद्देश्य जीवन विताना, कर्तव्य अकर्तव्य का विचार छोड़ देना अनुचित है। क्योंकि तुच्छता और उद्देश्य हीनता के साथ जीवन बिताने के लिए तैयार हो जाने पर भी इस बात की कोई निश्चितता नहीं है कि कोई विपत्ति न आवेगी और मन माने भोग ऐश्वर्य प्राप्त होते रहेंगे। इसलिए इन सब बातों पर विचार करते हुए हमें चाहिए कि कायरता, भीरुता तृष्णा, संकीर्णता और तुच्छता के छुद्र प्रलोभनों को छोड़कर कर्तव्य पथ की ओर बढ़ें, जीवन को सफल बनाने का प्रयत्न करें, आत्मा को परमात्मा बना देने की दिशा में प्रगति करें।

यह मार्ग देखने में कुछ कठिन मालूम देता है। कष्ट और अभावों की संभावना अधिक दिखाई देती है परन्तु यह केवल भ्रम है। कर्तव्य पालन में, धर्म साधना में, सेवा पथ में, यदि आनन्द कम और कष्ट अधिक होता तो कोई भी बुद्धिमान और विवेकवान व्यक्ति इस पथ पर चलने को तत्पर न होता। भगवान रामचन्द्र, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, सुकरात आदि की समझदारी कम न थी। यदि वे देखते कि धर्म का मार्ग आनन्द रहित और दुखदायी है तो वे कदापि उस ओर कदम न बढ़ाते। जीवन का वास्तविक सुख, वास्तविक आनन्द, वास्तविक साफल्य, परमार्थ में है इस बात को हर एक महापुरुष ने पहचाना है, समझा है और अनुभव किया है, परन्तु हममें से कितने ही मनुष्य उस ध्रुव सत्य पर विश्वास करते हुए हिचकते हैं, उस राजमार्ग पर कदम रखते हुए डरते हैं।

जो तुच्छ प्रलोभन हमें ललचाते हैं, जो जो भय और संदेह हमें डराते हैं वे महापुरुषों और

महात्माओं को भी ऐसे ही ललचाते और डराते थे, परन्तु उनने साहस से काम लिया, दृढ़ता को अपनाया। इन दोनों मानसिक शत्रुओं को उन्होंने घृणा पूर्वक ललकारा और सदैव उनसे संघर्ष किया। जब भी लोभ और भय ने आक्रमण किया तभी उनने अपने को सँभाल लिया और सत्य के पथ पर अविचल भाव से मजबूती के साथ पैर रखते हुए आगे बढ़ते गये। आज वे महापुरुष हैं संसार उनके चरणों पर अपना मस्तक झुकाये खड़ा है। कहने को वे मर गये परन्तु वास्तव में वे अमर हैं, जब तक यह संसार कायम रहेगा तब तक वे भी जीवित रहेंगे।

कर्तव्य पालन में इतना आन्तरिक आनन्द छिपा हुआ है जिसकी तुलना संसार का कोई भी आनन्द नहीं कर सकता। धर्म के साथ सांसारिक सुख भी लिपटा हुआ है पर यदि कारण वश कष्ट भी उठाना पड़े तो उससे डरने की कोई बात नहीं है क्योंकि यह कष्ट उस आनन्द की तुलना में न कुछ के बराबर है। महापुरुषों ने इस सचाई को भली भाँति समझा है इसलिए उन्होंने धर्म को अपनाया है और उसके लिए सब प्रकार के भय और प्रलोभनों के ऊपर विजय प्राप्त की है। अपने सिद्धान्तों के लिए आत्म बलिदान किया है। यही महापुरुष बनने का, महानता प्राप्त करने का मार्ग है। यह देखने में जितना कठिन मालूम पड़ता है अनुभव में उतना ही सरल और सुख दायक है। हम महापुरुष बन सकते हैं बशर्ते कि लोभ और आशंकाओं से लड़ते हुए धर्म पालन के मार्ग पर दृढ़ता पूर्वक कदम बढ़ावें।

———

मारने में वीरता नहीं, पशुता है; परन्तु जिसमें स्वयं मरने की शक्ति है वह वीर है। त्याग का आदर्श महान है; और वही संसार में कुछ कर सकता है जिसमें त्याग की मात्रा अधिक हो।

× × ×

अपने ऊपर भरोसा करो !

(श्री० बैजनाथ बर्मा, पारादान)

यदि आप चाहते हैं कि दूसरे लोग आपके ऊपर भरोसा करें तो इसका सबसे सुलभ और सुनिश्चित उपाय यह है कि आप अपने ऊपर भरोसा करें। दुनियां में ऐसे अनेक मनुष्य हैं जिन पर कोई भरोसा नहीं करता, उन्हें गैर जिम्मेदार और वे पैंदे का समझा जाता है तथा जगह जगह दुतकारा जाता है। ऐसे मनुष्य अपने आपे के प्रति अविश्वासी होते हैं। उनके चहरे से, भावभंगी से, वाणी से, यह स्पष्ट रूप से प्रकट होता रहता है कि वह अपने आपके ऊपर भरोसा नहीं करता।

बाहर के मनुष्य हमें उसी नाम से पुकारते हैं कि जो हम अपना नाम उनके सामने प्रकट करते हैं। जब हमारी भावभङ्गी और वाणी से दीनता तुच्छता, असमर्थता,निराशा, निर्बलता,असमर्थता, प्रकट होती है तो तुरन्त ही दूसरे लोग भी हमें वैसा ही मान लेते हैं और तदनुसार ही हमारे साथ व्यवहार करते हैं। जो लोग साहस पूर्वक किसी काम को करने के लिए खड़े होते हैं और यह घोषित करते हैं कि हम इस काम को पूरा करेंगे, देखा गया है कि वे लोग सफल हो भी जाते हैं। ईश्वर मर्दों का मददगार है। वह उन लोगों की सहायता करता है जो अपनी सहायता आप करने को तत्पर होते हैं।

आपके सामने आज जो कार्यक्रम है उसे पूरी दिलचस्पी के साथ पूरा करने का प्रयत्न कीजिए अपनी योग्यता, बुद्धिमत्ता और कार्मशीलता पर पूरा भरोसा रखिए। सारी शक्ति को एकत्रित करके अपने उद्देश्य को पूरा करने में इस प्रकार प्रवृत्त हूजिए मानो सफलता प्राप्त करने के लिए आपने प्राण प्रण से निश्चय कर लिया है। छिछोरपन और हीनता की वाणी बोलना छोड़िए और गंभीरता, उत्साह पूर्ण आशा तथा दृढ़ता के साथ कार्य करना सीखिए। याद रखिए—इस दुनियाँ में सफलता उसे मिलेगी जो आत्म विश्वासी होगा। ——

वास्तविक अहिंसा क्या है ?

(श्री महात्मा चिदानन्दजी सरस्वती)

किसी से अभिद्रोह न करना अहिंसा है। जब अभिद्रोह करना बुरा माना है तो मन, वाणी या शरीर से किसी को सताना या किसी की हत्या करना ही बुरा है। वेद ने विश्व प्रेम तथा विश्व भ्रातृ भाव का विस्तार दिया है। चींटी से लेकर मनुष्य तक सब के अन्तर्गत आत्मा का जब अपना ही स्वरूप मानने का आदेश है, तो फिर किसी को मारना, सताना नहीं होता, फिर अभिद्रोह करने की तो बात ही नहीं उठती !

अब प्रश्न यह उठता है कि वेद जो "यस्तुसर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति" अर्थात् सब प्राणियों में अपनी आत्मा समझने का विचार दिया है—उसी वेद में आततायी शत्रुओं को मारने, काटने के मन्त्र भी आते हैं। यह परस्पर विरोध क्यों ? इसका उत्तर इतने में ही समझ लेना चाहिये कि वैदिक ऋषि इस जगत् के व्यवहार को खूब जानते थे। उन्हें पता था कि इस प्राणी समूह में सात्विक, राजस तथा तामस सभी प्रकृति के जीव हैं। जो जीव इस जगत् में किसी को हानि पहुंचाते हैं, उन्हें दण्ड देने या मारने को शास्त्र इस लिये पुण्य मानता है कि उस दण्ड से जहाँ राष्ट्र में शांति स्थापित होती है वहाँ उस प्राणी का भी भला होता है। जैसे डाकू है और वह रास्ते में जाने वाले यात्रियों को लूटता मारता है। यदि ऐसे पुरुष को पकड़ कर दण्ड दिया जावेगा तो एक तो उसे जेल (कारागार) में रखने से संसार में शांति होगी, दूसरा कारागार में कष्टमयी यातनाओं के भोगने से उसका मन भी आगे से ऐसे कुकर्म करने के लिये उसके मन में भय उत्पन्न होगा। साथ ही इस प्रकार के दूसरे लोगों पर भी इसका प्रभाव पड़ेगा और वे भी अनुभव करेंगे कि यदि हमने भी डाका डाला तो हमें भी जेल या दूसरे दण्ड भोगने पड़ेंगे। इसी प्रकार—शेर, चीता, मगरमच्छ, सांप तथा दूसरे हानिकारक प्राणियों और जगत् की शांति तथा जाति के नियमों के नाशक पुरुषों को मारना भी अहिंसा में शामिल किया गया है—हिंसा में नहीं।

यजुर्वेद के मन्त्र ("द्यौशान्ति रन्तरिक्ष ॐ शान्ति") में शान्ति प्राप्ति की प्रार्थना की गई है कि हे प्रभो ! हमें सूर्य, चान्द, पृथ्वी, जल, भूमि आदि सब शान्ति दें—तो वहीं यह वाक्य भी आता है कि "शान्तिरेव शान्तिः" अर्थात् हे परमेश्वर ! वह शान्ति भी हमारे लिये शान्ति का कारण हो। इसका तात्पर्य यह है कि जिस शान्ति के रखने से परिणाम में अशान्ति उत्पन्न होती है वह शान्ति हमें नहीं चाहिये। इस बात को यदि हम विस्तार से समझना चाहें तो इस तरह समझें कि कोई दुष्ट हमारे घर में आकर हमारा सामान उठाता है, या हमारी बहू बेटियों का कुदृष्टि से देखता है, या हमें मार्ग में सताता है और हम उसे इस लिये कुछ नहीं कहते कि इसे पकड़ने, या मारने से अशान्ति होगी, इसलिये शान्ति रखनी चाहिये, तो वेद ऐसी निष्क्रयी शान्ति के विरुद्ध है। वेद कहता है कि यह शान्ति तो सदा के लिये अशान्ति उत्पन्न करने वाली होगी। यदि पापी को दण्ड दिया गया तब तो सदा के लिये शान्ति रहेगी। दुष्टों को दण्ड देना ही स्थायी शान्ति की स्थापना है। इसी लिये यह प्रार्थना है कि हमारी 'शान्ति' 'शान्ति कारिणी' हो।

सारांश यह है कि आत्मरक्षा Self defence में की गई हिंसा 'अहिंसा' है। उस अवस्था में हानिकर पशु, प्राणी या मनुष्य को मारना अथवा दण्ड देना पाप नहीं। इस भाव को सूक्ष्म दृष्टि से विचारने से यह स्पष्ट हो जाता है जहां वेद सबसे प्रेम और मित्र दृष्टि से देखने की आज्ञा देता है; वहां दुष्टों तथा हानिकर पुरुषों को ताड़ने,

मारने और दण्ड देने की भी आज्ञा देता है। वेद के यह वाक्य परस्पर विरोधी नहीं; प्रत्युत यह जगत में स्थायी शान्ति स्थापना का निश्चित नियम है। इसी भाव को न जानने से आर्य जाति, जो कि वीर और लड़ाकू जाति थी, जिसकी शक्ति से शत्रु थर २ काँपते थे, जिसका नाम सुनकर दुष्टों के हृदय धड़कने लग पड़ते थे, आज वह 'दब्बू' डरपोक सी बनी हुई है। साधारण से साधारण पुरुष भी इसे दबा लेने का साहस कर सकता है।

आर्यों के धर्मशास्त्रों में आत्म रक्षा के लिये दुष्टों को मारने के निमित बहुत से प्रमाण और दृष्टान्त मिलते हैं। जैसे कि यजुर्वेद १ अध्याय के ८ वें मन्त्र में लिखा है, कि—

धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वामः ॥

अर्थात्—हे प्रभो ! जो दूसरों की हिंसा करता है उसे आप नाश करें और उसको मारें ! दण्ड दें !! जो हमको वध करता है उसका नाश कर !!! और जिसका हम विनाश करना चाहते हैं, उसको धूलि में मिला ! पुनः इसी वेद के ११ वें अध्याय के ८० वें मन्त्र में लिखा है, कि—

योऽस्भ्यमरातीयाद्यश्चनो द्वेषते जनः।
निन्दाद्योऽस्मान् धिप्साच्च सर्वं तं भस्मसा कुरु॥

अर्थात्—जो मनुष्य हमें लूटता है, हमारे से द्वेष करता है, जो हमारी निन्दा करता है या जो हमारी हिंसा करना चाहता है, उसे तुम "भस्मसा कुरु" मार कर भस्म करो।

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यः त योऽस्माऽभिदासत्यधरं गमया तमः। यजुः ८।४४।

अर्थात्—हे परमेश्वर्य वाले इन्द्र ! हमारे शत्रुओं को मारो। जो हमारे ऊपर चढ़ाई करते हैं उन्हें नीचा दिखा। जो हमें दास (गुलाम) बनाना चाहता है उसे नीचे अन्धेरे में फेंक दे।

प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्त रक्षो निष्टप्ता अरातयः। उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥
यजु० १।७।

विघ्नकारी दुष्ट स्वभाव के पुरुषों, राक्षसों और लुटेरों को जला दो ! अदान शील कंजूसों, पर द्रव्योपहारी निर्दयी पुरुषों को ठीक २ जाच कर संतापित करना चाहिये। विघ्नकारी दुष्ट शत्रु पुरुष खूब तप्त हों। और इस प्रकार राष्ट्र को दुष्ट विघ्न कारियों से रहित करके विस्तृत महान् अन्तरिक्ष प्रदेश को भी अपने वश में करें तथा दुष्टों का सदा नाश करें।

ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुरा सन्तः स्वधयाचरन्ति परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टांल्लोकात् प्रणुदात्यस्मात
यजुः २।३०।

अर्थात्—जो असुर-दुष्ट अनेक धोखे से रूप बना कर, हमारे पदार्थों को खाते या उड़ाते हैं। जो हमारे पर बाहर या भीतर से आक्रमण करते हैं, ऐसे स्वदेशी या परदेशी दुष्टों को हे वीर तुम दूर भगा दो।

अपेतो यन्तु पणयो असुम्ना देवपीयवः ॥
यजुः ३५।१।

दुःख दायी, देवों की हिंसा करने वाले दुष्टों को भगा दो।

नीचैःपद्यन्तामधरे भवंतु ये नः सूरिं मघवानंपृतन्यान क्षिणामि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वानहम् ॥
अथर्ववेद ३।१६।३॥

अर्थात्—जो भले पुरुषों पर (खामखा) आक्रमण करते हैं, वे नीचे गिरें और नीचे हों। उन शत्रुओं को मैं ज्ञान शक्ति की सहायता से नाश करता हूं और अपने साथियों को ऊपर उठाता हूं।

यो नः सोम सुशंसिनी दुःशस आदिदेशति।
वजेणास्य मुखे जहि स संपिष्टो अपायति॥
अथर्व० ६।६।२॥

अर्थात्—जो दुष्ट, सज्जनों को सताता है, हम हथियार से उसके मुख को तोड़ दें, जिससे पिटा हुआ वह दुष्ट भाग जावे।

यो नः सोमाभिदासति सनाभिर्यश्च निष्ट्यः।
अप तस्यबलं तिर महीवद्यौर्वधात्मना॥अ० ६।६।३

अर्थात्—जो कोई हमें तङ्ग करता या दास बनाता है, चाहे वह 'सनाभि—अपना है' चाहे निष्ट्य—बेगाना—उसके बल को तोड़ दो और उसे मार भगादो।

वेद के इन मन्त्रों से स्पष्ट है कि जो राष्ट्र को हानि पहुंचाता अथवा निरपराधी पर आक्रमण करता या जो निर्दोष व्यक्तियों के धन को लूट, खसूटता तथा दूसरे प्रकार के अत्याचार करता है, ऐसे आततायी को मारना, ताड़ना या दण्ड देना पुण्य है। इसी प्रकार स्मृतिकारों ने भी लिखा है, कि :—

आत्मनश्च परित्राणे दक्षिणानां च संगरे,
स्त्री विप्राभ्युपपत्तौ चाध्नन्धर्मेण न दुष्यति।
मनु० ८।३४॥

अर्थात्—अपनी रक्षा पर (Self defence) धन के लूटे जाने पर, स्त्रियों और ब्राह्मणों पर संकट आने पर, दुष्टों को मारने वाला दोषी नहीं होता। शास्त्रों ने आततायी को मारने में कोई दोष माना ही नहीं।

नाततायी वधे दोषी हतुर्भवति कश्चन,
प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्युमृच्छति।
मनु० ८।३५१।

अर्थात्—सामने वा छिप कर मारने वाला जो आततायी है, उसके मार डालने में कोई दोष नहीं, क्योंकि मन्यु (क्रोध) उस मन्यु (क्रोध) को प्राप्त होता है अर्थात् दुष्ट ने निरपराधी को मारने के लिये जो क्रोध किया है, अपनी रक्षा में वही क्रोध उस दुष्ट के क्रोध से लड़ता है। मन्युस्तं मन्युमृच्छति, एक मुहावरा है, जिसे अंग्रेजी में Tit for Tat कहते हैं। इसी प्रकार आततायी को बिना सोचे समझे मार देने की आज्ञा भी स्मृति में है। यथा—

'अततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्'
मनु० ८।३५६॥

धर्म शास्त्र कारों ने छः आततायी माने हैं।

अग्निदो गदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः।
क्षेत्रदारहरश्चैवषडेते ह्याततायिनः॥ मनुः ८।३५०

जो आग लगाने आया हो, जो विष देकर मारना चाहता हो, जो हाथ में शस्त्र लेकर मारने आया हो, जो लूटने आया हो, जो भूमि और स्त्री को हरने आया हो, ये छः आततायी होते हैं, इनको बिना विचारे मार देना चाहिये।

उपरोक्त वेद और शास्त्रों के प्रमाण आततायी को मारने का आदेश करते हैं। इन प्रमाणों की विद्यमानता में यदि कोई आततयी को मारने में हिंसा समझता है, तो यह उसकी आत्मिक निर्बलता और नीति हीनता है।

तारे आकाश की कविता हैं, तो स्त्रियाँ पृथ्वी की। दुनियाँ भाग्य के निस्तार इन्हीं के हाथ में है।

× × ×

जब तक आदम अकेला था तब तक स्वर्ग भी कंटकाकीर्ण था। देवताओं के गीत, शीतल समीर और ललित वाटिकायें, सभी व्यर्थ थी, उसमें वह उदास रहता था और आहें भरता था।

× × ×

यदि तुम प्रेम के साक्षात् दर्शन करना चाहते हो तो माता के गदगद नेत्रों को देखो।

× × ×

सफलता साहस पूर्वक काम करने वाले के पास जाती है; यह कायरों के पास नहीं जाती है।

× × ×

संयोग और वियोग जीवन का नियम है; वियोग और संयोग आशा का।

× × ×

गायत्री की दैनिक साधना ।

(श्री० मन्त्र योगी)

— —— —

पिछले अङ्क में 'मन्त्र शक्ति का रहस्य' लेख लिख कर मैंने बताया था कि मन्त्र द्वारा जो चमत्कारी शक्ति प्राप्ति होती है उसका कारण क्या है। निस्संदेह मन्त्रों में बहुत बड़ा बल मौजूद है और यदि कोई उनका ठीक ठीक उपयोग जानले तो अपनी और दूसरों की बड़ी सेवा कर सकता है। गोस्वामी तुलसीदास जी का कथन है कि—

मंत्र परम लघु जासुबस विधि हरिहर सुर सर्व।
महामत्त गजराज कहँ बस करि अंकुश खर्व॥

यों तो बहुत से मन्त्र हैं। उनके सिद्ध करने और प्रयोग करने के विधान अलग अलग हैं और फल भी अलग अलग हैं। परन्तु एक मंत्र ऐसा है जो सम्पूर्ण मन्त्रों की आवश्यकता को अकेला ही पूरा करने में समर्थ है। यह गायत्री मन्त्र है। गायत्री मन्त्र ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद और साम-वेद चारों वेदों में है। इसके अतिरिक्त और कोई ऐसा मन्त्र नहीं है जो चारों वेदों में पाया जाता हो। गायत्री वास्तव में वेद की माता है। तत्वदर्शी महात्माओं का कहना है कि गायत्री मन्त्र के आधार पर वेदों का निर्माण हुआ है, इसी महामन्त्र के गर्भ में से चारों वेद उत्पन्न हुए हैं। वेदों के मन्त्र दृष्टा ऋषियों ने जो प्रकाश प्राप्त किया है वह गायत्री से प्राप्त किया है।

गायत्री मन्त्र का अर्थ इतना गूढ़ गंभीर और अपरिमित है कि उसके एक एक अक्षर का अर्थ करने में एक एक ग्रन्थ लिखा जा सकता है। आध्यात्मिक, बौद्धिक, शारीरिक, सांसारिक, ऐति-हासिक, अनेक दिशाओं में उसका एक एक अक्षर अनेक प्रकार के पथ प्रदर्शन करता है। वह सब गूढ़ रहस्य यहां इन थोड़ी सी पंक्तियों के छोटे से लेख में लिखा नहीं जा सकता। यहां तो पाठकों को गायत्री का प्रचलित, स्थूल और सर्वोपयोगी भावार्थ यह समझ लेना चाहिए कि—तेजस्वी परमात्मा से सद्बुद्धि की याचना इस मन्त्र में की गई है। श्रद्धा पूर्वक इस मन्त्र की धारणा करने पर मनुष्य तेजस्वी और विवेक शील बनता है। गायत्री माता अपने प्रिय पुत्रों को तेज और बुद्धि का प्रसाद अपने सहज स्नेह वश प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त अनेक आपत्तियों का निवारण करने की शक्ति गायत्री माता में है। कोई व्यक्ति कैसी ही विपत्ति में फँसा हुआ हो यदि श्रद्धा पूर्वक गायत्री की साधना करे तो उसकी आपत्तियां कट जाती हैं और जो कार्य बहुत कठिन तथा असंभव प्रतीत होते थे वे सहज और सरल हो जाते हैं।

जिन्हें मन्त्र ठीक तरह शुद्ध रूप से याद न हो वे नीचे की पंक्तियों से उसे शुद्ध कर लें।

"ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्।"

साधारणतः जप प्रतिदिन का नियम यह होना चाहिए कि कम से कम १०८ मन्त्रों की एक माला का नित्य किया जाय। जप के लिए सूर्योदय का समय सर्वश्रेष्ठ है। शौच स्नान से निवृत्त होकर कुश के आसन पर पूर्वाभिमुख होकर बैठना चाहिए। धोती के अतिरिक्त शरीर पर और कोई वस्त्र न रहे। ऋतु अनुकूल न हो तो कम्बल या चादर ओढ़ा जासकता है। जल का एक छोटा पात्र पास में रखकर शान्त चित्त से जप करना चाहिए। होट हिलते रहें, कंठ से उच्चारण भी होता रहे परन्तु शब्द इतने मंद स्वर में रहे कि पास बैठा हुआ मनुष्य भी उन्हें न सुन सके। तात्पर्य यह है कि जप चुपचाप भी हो और कंठ ओष्ठ तथा जिह्वा को भी कार्य करना पड़े। शान्त चित्त से एकाग्रता पूर्वक जप करना चाहिए। मस्तिष्क में त्रिकुटी स्थान पर सूर्य जैसे तेजस्वी प्रकाश का ध्यान करना चाहिए और भावना करनी चाहिए कि उस प्रकाश की तेजस्वी किरणें मेरे मस्तिष्क तथा समस्त शरीर को एक दिव्य विद्युत

ाक्ति से भरे दे रही हैं। जप और ध्यान साथ साथ ासानी से हो सकते हैं। आरम्भ में कुछ ऐसी ठिनाई आती है कि जप के कारण ध्यान टूटता और ध्यान की तल्लीनता से जप में विक्षेप पड़ता यह कठिनाई कुछ दिनों के अभ्यास से दूर ो जाती है।

गायत्री वेद मन्त्र है। वेद का उच्चारण अशुद्ध थान पर अपवित्र अवस्था में करना निषिद्ध है। सलिए इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वित्र होकर ही जप किया जाय। स्नान यदि ंभव न हो तो हाथ पैर मुँह अवश्य ही धो लेना ाहिए। कपड़े धुले हुए न हों तो धोती को छोड़कर न्य वस्त्र उतार देने चाहिए। जप के लिए यदि ुश का आसन न हो तो चौकी आदि लकड़ी की केसी चीज का प्रयोग किया जा सकता है। ऊनी ासन भी किसी हद तक ठीक है। रेशम मृगछाला ादि के आसन भी वैसे शास्त्र सम्मत हैं परन्तु नमें जीव हिन्सा होती है इसलिए जहां तक हो सके मड़े के आसन काम में न लाने चाहिए। कपड़े े बिछोने पर या खाली जमीन पर बैठ कर जप रना ठीक नहीं क्योंकि ऐसा करने से जप के द्वारा ाप्त हुई विद्युत शक्ति जमीन में खिच कर चली ाती है। रोग में, अशुद्ध अवस्था में, आकस्मिक ापत्ति में जब मन्त्र जप की आवश्यकता हो तो न ही मन जप करना चाहिए, कंठ, होंट या जिह्वा ा जरा भी प्रयोग न होना चाहिए। इस प्रकार ा जप रास्ता चलते, काम करते या विस्तर पर ड़े पड़े भी किया जा सकता है। ऐसे जप में माला ा प्रयोग न करना चाहिए।

उपरोक्त रीति से नित्य जप करना चाहिए। इससे शरीर का स्वास्थ्य ठीक रहता है। रक्त की शुद्धि और बल वीर्य की वृद्धि होती है। चहरे की चमक बढ़ जाती है। वाणी में प्रभाव डालने वाली शक्ति की अधिकता होने लगती है, स्मरण शक्ति तीव्र होती है। सद्असद् विवेक करने वाली बुद्धि का विकाश होता है, धैर्य और साहस बढ़ता है, चित्त में प्रसन्नता और शान्ति रहती है, ईश्वर और धर्म की ओर मन झुकने लगता है व्यसन व्यभिचार और दुष्कर्मों से घृणा होने लगती है। यह लाभ पूर्णतया निश्चित हैं। हमने अब तक अनेक व्यक्तियों को गायत्री का जप सिखाया है उन सब का अनुभव है कि इन नियमों के साथ कुछ दिन लगातार श्रद्धा पूर्वक जप करने से उपरोक्त सभी लाभ प्राप्त होते हैं।

यह दैनिक जप का साधारण क्रम है। आध घंटा समय नित्य लगाकर उपरोक्त रीति से गायत्री के कम से कम १०८ मन्त्र आसानी से जपे जा सकते हैं। जिन्हें यह मन्त्र सिद्ध करना हो वे सवालक्ष गायत्री का विधि पूर्वक जप करके उसे सिद्ध कर सकते हैं। इस सिद्धि से ऐसी ऐसी अद्भुत शक्तियाँ प्राप्त होती हैं जिनकी शक्ति की कोई तुलना नहीं। मन्त्र शास्त्र के समस्त मन्त्रों से गायत्री का बल अनेक गुना है। जो कार्य किसी मन्त्र से होता है वह गायत्री से भी अवश्य हो सकता है अगले अङ्क में हम गायत्री को सवालक्ष मन्त्र जप करके सिद्ध करने की विधि बतावेंगे।

सात्विक सहायताएं।

इस मास ज्ञान यज्ञ के लिए निम्न सहायताएं प्राप्त हुईं। अखंडज्योति इन महानुभावों के प्रति अपनी आन्तरिक कृतज्ञता प्रकट करती है।

२०) श्री० बी० एम० शारदा शोलापुर।
६॥) श्री० मेघराज इन्द्रकुमार नवतारा।
२) श्री० प्रयागदत्त जोशी दन्या।
१।) श्री० स्वामी बालकृष्णदासजी करांची।
१) श्री० रामकृष्ण वर्मा लखनऊ।
१) श्री० जागीदत्त बंसवाल पहाड़ापुर।

जाड़े बुखार से सुरक्षित रहने के उपाय।

(श्री० गुरुदयालजी वैद्य अलीगढ़)

निम्न नियमों पर चलने से प्रत्येक मनुष्य इस रोग के आक्रमण से बच सकते हैं, मक्खी तथा मच्छरों से यथा सम्भव यथा शक्य सदा पृथक रहना। पानी के निकट स्थान जैसे सरोवर आदि का परित्याग। जहां पानी भरा रहता हो वहां मिट्टी का तेल छिड़क देना। प्रत्येक कमरे में वामी की मिट्टी डालना, वामी की मिट्टी में विषम ज्वरों (Malrial fevers) के कीटांणु नष्ट करने की अपूर्व शक्ति है। बड़े से बड़े कमरेमें ऽ१ सेर वामी की मिट्टी काफी है, अधिक पड़ जाय तो कुछ हानि नहीं। सर्पकी वामी की मिट्टीके अभाव में कलई तथा सूखा तम्बाकू कूटा हुआ डाला जा सकता है। मिथ्या अहार विहार का परित्याग। सुपाच्य भोजन अल्पमात्रा में करना। दुर्गन्धित वायु का परित्याग शुद्ध वायु का सेवन। प्रातःकाल का परिभ्रमण, मित्य प्रात पांच तुलसी के पत्तों का सेवन करना। उदर में किञ्चिन मात्रा भी कोष्टबद्धता कब्ज मालूम होने पर मृदुविरेचन द्वारा जिसका प्रयोग आगे लिखा जावेगा पेट साफ कर लेना।

मृदुविरेचन—काला दाना ६ मासा,काला.नमक ६ मा. सनाय ६ मा. सोठ ६ मा. पीपल ६ मा. निसोथ ६ मा सबको कूट पीसकर शीशी में भरलो मात्रा बड़े आदमी के लिये ३ मा० प्रातः सायं गरम जल के साथ यह बहुत अच्छी दवा है। पचा हुआ दस्त होता है बार बार पाखाना नहीं जाना पड़ता एक दो दस्त में सब मल निकल कर पेट साफ हो जाता है।

ज्वर आने से पहिले ये लक्षण होते हैं—बिना परिश्रम के थकावट, समस्त शरीर अस्वस्थ जान पड़ना मुख का स्वाद बिगड़ जाना नेत्रों में जलन पड़ना—रोंगटे खड़े होकर सरदी लगना जम्भाई आना देही टूटना भोजन में अरुचि आदि। जनता के सुभीते तथा काम के लिये कुछ प्रयोग नीचे दिये जाते हैं जो कि विषम ज्वरों पर कई बार के अनुभूत हैं।

(१) प्रथम प्रयोग-नित्य आने वाले ज्वर पर—इन्द्र जौ १ तो० पटोल पत्र १ तो० कुटकी १ तो० सबको मिटटी के पात्र में आध सेर ऽ।। पानी डाल मुख खोलकर औटाओ। एक छटांक ऽ- जल शेष रहने पर १ तो० शहद मिला प्रातःसायं पीना चाहिये लाभप्रद है। (२)द्वतीय प्रयोग नित्य आने वाले ज्वर पर पटोल पत्र १ तो० नागरमाथा १ तो. पाढर १ तो. कुटकी ६ मा. सोंफ १ तो० मिश्री २ तो० सबको पावभर ऽ। पानी में डाल क्वाथ बना १ छटांक शेष रहने पर पीले। सांयकाल को फिर उसी क्वाथ की हुई दवा औटावे और मिश्री डालकर पान करे अवश्य लाभ होगा। (३) तृतीय प्रयोग—दूसरे दिनके ज्वर पर—नीम की छाल १ तो०पटोलपत्र १ तो० त्रिफला ६ मा. दाख ७ नग नागरमोथा ६ मा. इन्द्रजौ ६ मा. गुलकन्द २ तो. सबको क्वाथ बना दोनों समय सेवन करना चाहिये। (४) चतुर्थ प्रयोग—तीसरे दिन आने वाले ज्वर पर—गिलोय ६ मा. धनिया ४ मा. रक्त चन्दन ६ मा. सौठ ६ मा० खस ६ मा. मिश्री २ तो. मिला काढ़ा बना दोनों समय पीने से तिजारी जाती रहती है। (५) पञ्चम प्रयोग चौथे दिन आने वाले ज्वर पर—गिलोय धनिया नागरमाथा प्रत्येक १।। तोले क्वाथ बना १ तोले शहद मिला प्रातःसांय पीने से चोथिया जाती रहती है। (६) षष्टम प्रयोग सब प्रकार के विषम ज्वरों पर—पटोलपत्र ६ मा. इन्द्र जौ ४ मा. देवदारु ४ मा. मुलैठी ६ मा. गिलोय ६ मा. दाख ७ नग दाने त्रिफला ६ मा. गूदा अमलतास २ तो. अड्रूसा ५ मा. लिसौड़ा ५ नग इनके क्वाथ में २ तोला शहद डालकर पीने से सभी प्रकार के विषम ज्वर निश्चय करके टूट जाते हैं।

———

संगीत-विश्व का प्राण है।

संगीत का मनुष्य जीवन को सरस बनाने में बड़ा महत्व पूर्ण स्थान है। यदि संगीत का अस्तित्व मिट जाय तो दुनियां बड़ी ही नीरस, रूखी, और कर्कश प्रतीत होने लगेगी। साधारण पशु की अपेक्षा मनुष्य को जो आनन्द मयी स्थितियाँ प्राप्त हैं उनमें सङ्गीत, साहित्य और कला का बहुत बड़ा भाग है।

जड़ पदार्थों में गति उत्पन्न करने के लिए गर्मी का कार्य प्रधान हैं। अन्य तत्वों से भी गति का संचार होता है परन्तु प्रधानता अग्नि तत्व की ही है। इसी प्रकार चैतन्य तत्वों में जो हलचलें होती हैं उसके कारण यद्यपि अन्य भी हैं पर सङ्गीत की उनमें प्रधानता है। प्राणियों के अन्दर जो चैतन्य तत्व है वह सङ्गीत के द्वारा गति प्राप्ति करता है, आगे बढ़ता है, विकसित होता है।

वैज्ञानिक खोजों से यह पता चला है कि शून्य सृष्टि की निराकार स्थिति जहाँ है वहाँ से एक प्रकार का शब्द उत्पन्न होता है यह शब्द ऐसा है जैसे कि थाली में एक हलकी चोट मारदी जाय तो वह बहुत देर तक झनझनाती रहती है। ऐसी झंकृतियाँ पानी की लहरों की भाँति बार बार अदृश्य अन्तराल में से उठती हैं। उनकी झंकृतियों के आघातों से इलेक्ट्रोन परमाणु (विद्युत घटकों) में गति उत्पन्न होती है और वे अपनी धुरी पर उसी प्रकार घूमने लगते हैं जैसे कि सृष्टि के बड़े बड़े ग्रह, नक्षत्र, पृथ्वी आदि अपनी अपनी धुरी पर बड़ी तीव्र गति से घूम रहे हैं। इलेक्ट्रोन परमाणुओं में गति उत्पन्न होने से दुनियां का सारा काम चलने लगता है। घड़ी की चाबी का पुर्जा चलने से उसके अन्य पुर्जे भी चलने लगते हैं इसी प्रकार इलेक्ट्रोन कणों में हरकत होने से संसार की समस्त दृश्य अदृश्य क्रियाऐं होने लगती हैं।

इस वैज्ञानिक खोज से प्रतीत होता है कि अदृश्य झंकृति के सङ्गीत मय कम्पन को प्रेरणा से ही समस्त सृष्टि का काम चल रहा है यदि यह सङ्गीत बन्द होजाय तो प्रलय में तनिक भी विलम्ब न समझना चाहिए। सङ्गीत द्वारा सृष्टि संचालन के उपरोक्त सिद्धान्त को आधुनिक वैज्ञानिकों ने ही ढूँढ निकाला है ऐसी बात नहीं है, भारतीय तत्व दर्शी आचार्य इन सब बातों को चिर प्राचीन काल से अनुभव करते आरहे हैं। योग की दिव्य दृष्टि द्वारा उन्होंने ढूँढ़ा कि सृष्टि को कौन चलाता है? उन्हें मालूम हुआ कि पंच तत्वों से ऊपर की भूमिका में एक घंटा नाद के समान झंकृति होरहा है उसके कम्पनों की प्रेरणा से विश्व में गति विधि जारी है। पंच तत्व जड़ हैं इसलिए वे स्वेच्छा पूर्वक निरंतर ऐसी प्रेरक गति अविचल रूप से सदैव जारी नहीं रख सकते अतएव यह कार्य किसी चैतन्य और नित्य शक्ति का होना चाहिए। गुण के अनुसार नाम रखा जाता है। जैसे जिसमें शूर बीरता होती है उसे 'बहादुर' जो अंटसंट बकता है उसे 'पागल' जो चिकित्सा करता है उसे 'वैद्य' कहते हैं उसी प्रकार उस संचालक, चैतन्य, नित्य, ईश्वर सत्ता का नाम करण करने के लिए भी ऋषियों को उसके गुण का आश्रय लेना पड़ा। घड़ियाल में चोट मार देने के बाद जो बहुत देर तक झंकृति होती है उस झंकृति का उच्चारण करीब करीब "ओं ॅ ॅ ॅ म्" जैसा होता है। सृष्टि संचालक शब्द भी इसी प्रकार का है इस लिए उसका नाम ॐ रखा गया। 'ॐ' अक्षर का प्राचीन कालिक रूप स्वास्तिक 卐 था। अब उसकी बनावट में सुधार होजाने के कारण "卐" को "ॐ" लिखा जाने लगा है। योगाभ्यास में कानबन्द करके दिव्य कर्णेन्द्रिय से 'अनहद नाद' सुनने की जो साधना है उसका तात्पर्य अपनी चेतना को सूक्ष्म परमात्म तत्व के निकट वर्ती प्रदेश तक पहुंचा देना है।

भौतिक सृष्टि का सारा खेल सङ्गीत की शक्ति शाली झंकृतियों के आधार पर चल रहा है। चैतन्य सृष्टि

की साकारिता भी संगीत के आधार पर है। मस्तिष्क के विद्युत कोषों में से प्रति सैकिण्ड करीब ३० या ३१ विचार तरंगें निकलती हैं। सिनेमा के फिल्म में एक सैकिण्ड में करीब सोलह चित्र आंखों के आगे से निकल जाते हैं आंखें उन चित्रों की प्रथकता को इतनी तेजी से देखने में असमर्थ रहती हैं इसलिए ऐसा भ्रम होने लगता है कि एक ही तस्वीर चल फिर रही है, वास्तव में होता यह है कि एक तस्वीर जरा सी हरकत करती दीखती है उतनी ही देर में उसके सैकड़ों चित्र आँखों के आगे से निकल जाते हैं। इसी प्रकार मस्तिष्क में से भी प्रति सैकिण्ड करीब ३०-३१ एक प्रकार की तरंगे निकलती हैं इनके सम्मिलन से जो एक बहुत बड़ा समूह बनता है उसे 'विचार' कहते हैं। मस्तिष्क के विद्युत कोषों का तरंगित होना भी एक सूक्ष्म सङ्गीत के ऊपर निर्भर है। प्राण वायु सहस्रार कमल से जाकर टकराती है जिससे ॐ की झंकृति से मिलता जुलता एक दूसरा शब्द उत्पन्न होता है। ऋषियों ने उसे "सोऽहम्" ध्वनि कहा है। यही अजपा जाप है। ब्रह्माण्ड में स्थिर सहस्त्रदल कमल से जाकर प्राण वायु न टकरावे और यह 'सोऽहम्' ध्वनि न हो तो मस्तिष्क की चेतना का—स्नायविक विद्युत शक्ति का अन्त होजायगा और क्षण भर के अन्दर मनुष्य की मृत्यु होजायगी।

योगी लोग जानते हैं कि शरीर का सूक्ष्म ढाँचा—सितार के ढांचे से बिलकुल मिलता जुलता है। भगवती सरस्वती के हाथ में बीणा का होना एक आध्यात्मिक अर्थ रखता है वह अर्थ यह है कि सद्विवेक का—सरस्वती का—प्राकट्य सितार की आकृति के बने हुए सूक्ष्म शरीर द्वारा होता है। मेरु दंड में इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना के तार लगे हुए हैं। मूलाधार स्थित कुण्डलिनी में यह तार बँधे हुए हैं। षट् चक्र इस सितार के वाद्य स्थान हैं! इनमें से विभिन्न प्रकार की झंकार हर घड़ी निकलती है। प्राण विद्या के सूक्ष्म दर्शी आचार्य बतलाते हैं कि गुदा और अंड कोष के बीच मूलाधार चक्र (Pelvic Plexus) में से "लं" की ध्वनि, पेडू के नीचे जननेन्द्रिय के ऊपर स्वाधिष्ठान चक्र (Hypogastric Plexus) में से "बं" की ध्वनि, नाभि स्थान के मणिपूर चक्र (Erigastric Plexus) में से "रं" की ध्वनि, हृदय में स्थित अनाहत चक्र (Cardiac Plexus) में से 'षं' की ध्वनि, कंठ स्थान के विशुद्धचक्र (Carotid Plexus) में से 'हं' की ध्वनि तथा भ्रू मध्य भाग के आज्ञाचक्र में से 'ॐ' की ध्वनि निकलती है। इस प्रकार यह छै झंकृतियां अनवरत रूप से प्रतिक्षण तरंगित होती रहती हैं। स्थूल जगत में स, रे, ग, म, प, ध, नि, के स्वर वाद्य यन्त्रों पर बजते हैं। हमारे सूक्ष्म यन्त्र का सितार अपने तारों से अपनी भाषा में दूसरी ध्वनियाँ निकालता है। यह ध्वनियां आपस में एक दूसरे से टकराती हैं और मिलती हैं। इस संघर्षण और सम्मिलन से मनुष्य का अन्तर्जगत सङ्गीत मय होजाता है। इन तरङ्गों में असाधारण शक्ति भरी पड़ी है, इनके प्रवाह से शारीरिक और मानसिक जगत के सूक्ष्म घटक गतिशील होते हैं, तदनुसार विभिन्न प्रकार की योग्यता रुचि, इच्छा, चेष्ठा, निष्ठा, भावना, कल्पना, उत्कंठा श्रद्धा आदि का आविर्भाव होता है और फिर इन्हीं के आधार पर गुण कर्म स्वभाव का शारीरिक मानसिक स्थूल ढाँचा दृष्टि गोचर होने लगता है। यह आध्यात्मिक सङ्गीत हमारा पथ प्रदर्शक है, हमें नीचे ऊपर, आगे पीछे, जहां चाहता है ले दौड़ता है।

घड़ी के पेण्डुलम की तरह हृदय की धड़कन अपना ताल ठेका अलग ही बजाती है। लप, डप, का क्रम तारबर्की की गर, गट्ट की समता करता है। इस तारबर्की से नस नस का पुर्जे पुर्जे का संचालन होता है। डाक्टर लोग स्टेथेस्कोप यन्त्र लगाकर इस तारबर्की के सङ्गीत की परीक्षा करते हैं कि कहीं यह सङ्गीत बेसुरा तो नहीं हो रहा है वे जानते हैं कि जरा सा बेसुरापन आते ही नाना

प्रकार के रोगों का उपद्रव उठ खड़ा होगा । चतुर सङ्गीतज्ञ की आखों से पट्टी बांधकर सितार सुनाया जाय तो वह उसके बेसुरेपन को सुनकर यह बता देगा कि इस बाजे के अमुक तार में अमुक प्रकार की खराबी है। इसी प्रकार से हृदय की धड़कन, या नाड़ी की धड़कन का अनुभव करके उसके बेसुरे पन के आधार पर चिकित्सक लोग यह बताते हैं कि शरीर के किस पुर्जे में क्या खराबी आगई है, क्या रोग होगया है।

अदृश्य जगत की सूक्ष्म कार्य प्रणाली पर जिधर भी हम दृष्टि डालते हैं उधर ही यह प्रतीत होता है कि एक दिव्य सङ्गीत से दशों दिशाऐं झंकृत होरही हैं, हर तरफ स्वर लहरी गूंज रही है। हृषीकेश का पाञ्चजन्य, शंकर का डमरू भगवान कृष्ण की मधुर मुरली, सरस्वती की वीणा का सत्य, शिव और सुन्दर सङ्गीत निनादित होरहा है और उसकी स्वर लहरी पर विमुग्ध होकर विश्व की जड़ चैतन्य सत्ता का प्रत्येक परमाणु नृत्य कर रहा है। प्रकृति और पुरुष की रास लीला का यह नृत्य वाद्य कितना सुन्दर कितना मोहक और कितना मादक है?

निस्संदेह विश्व सङ्गीत मय है। सङ्गीत ही इसकी प्रगति, प्रेरणा और प्राण शक्ति है। यह तत्व इतना महत्व पूर्ण और शक्ति सम्पन्न है कि इसके उपयोग से हम जीवन और मृत्यु, अमृत और विष जैसे परिणाम प्राप्त कर सकते हैं।

(शेष अगले अङ्क में)

मनुष्य की स्वतंत्र आत्मा पर अन्याय के विषमय फल नहीं लगने पाते।

× × ×

यह शरीर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थों का मुख्य साधन है। इसके आरोग्य-युक्त होने पर उक्त सब कार्यों की सिद्धि हो सकती है।

× × ×

आत्म-लाभ के कुछ क्षण।

(श्री० भगवानदासजी पारीख, भरथना)

यों तो अखण्ड ज्योति द्वारा स्वाध्याय और सत्संग का अखण्ड कार्यक्रम सदा चलता रहता है। कर्मयोग गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त करने के लिए भारत के कोने कोने से शिक्षार्थी लोग सदा आते रहते हैं परन्तु इस श्रावण मास में नाग पंचमी से लेकर श्रावणी तक ११ दिन के सत्संग का एक विशेष आयोजन हुआ था। मथुरा वृन्दावन में श्रावण के झूलों का उत्सव प्रसिद्ध है उसे देखने के लिए लाखों यात्री हर वर्ष पहुँचते हैं, ऐसे नयनाभिराम उत्सव के साथ साथ अखंड ज्योति का कर्मयोग सत्संग भी होरहा था। इस अवसर से लाभ उठाने का लोभ संवरण न होसका फल स्वरूप अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी मैं और पं० विश्वेश्वर दयालु जी मथुरा के लिए चल पड़े।

एक साधारण से पन्द्रह रुपया मासिक किराये के मकान में घियामंडी रोड पर अखण्डज्योति कार्यालय है। इस मकान में प्रवेश करने पर कोई ऐसा आकर्षण नहीं है जिसके चकाचौंध से कोई अजनबी मनुष्य प्रभावित होजाय, परन्तु कुछ ही देर ठहरने पर ऐसा अनुभव होता है कि इस स्थान में अत्यन्त प्रभावशाली विद्युत तरँगें प्रवाहित हो रही हैं और उनके प्रभाव से अन्तःकरण एक ढाँचे में उसी प्रकार अपने आप ढलने लगा है जैसे लोहा गरम होकर साँचे में जाता है और एक विशेष आकृति का तैयार हो जाता है। चुपचाप एकान्त होकर बैठिए तो भी ऐसा मालूम होता है कि यहां की वायु हृदय के भीतरी कोने में प्रवेश करके आध्यात्मिकता की शिक्षा दे रही है। कान उस शिक्षा को सुन नहीं पाते तो भी अन्तरात्मा उससे सन्तुष्ट हो जाती है और एक अनिर्वचनीय शान्ति का अनुभव होता है।

अखण्ड ज्योति का संचालन एक दुर्बल काय, व्यक्ति द्वारा होता है। कठोर परिश्रम, असाधारण अध्ययन, निरन्तर चिन्तन, नरनारायण की सेवा की असाधारण लगन आदि तपश्चर्याओं के कारण इसने अपना मांस सुखा डाला है। इस कृश काया में कोई खास सुन्दरता नहीं है फिर भी क्षणभर गंभीरता पूर्वक इसके चेहरे को देखने से प्रतीत होता है कि यह तेज का पुंज है, विद्या, अनुभव और ज्ञान की प्रौढ़ता इसके नेत्रों में से फूटी पड़ती है। बालक सा सरल, पुष्प सा पवित्र, धेनु सा उपकारी, स्नेह, दया शान्ति और निष्कपटता की मूर्ति यह सच्चा ब्राह्मण अपने ढङ्ग का अनोखा व्यक्ति हमने अपने जीवन में देखा। इसका नाम है—आचार्य श्रीराम शर्मा। साधारणः आचार्य जी कहकर इनको सब लोग सम्बोधन करते हैं।

मैं कई वर्ष से अखण्डज्योति का ग्राहक हूं। इसके लेखों से हम लोग बहुत ही प्रभावित होते हैं, कितने ही व्यक्तियों को इन कागज के पन्नों ने कुछ का कुछ बना दिया। पत्रिका के लेखों में ऐसी यथार्थता और प्रभाव शालीनता रहती है कि उससे अन्तःकरण में सोधी हलचल पैदा होती है। ऐसा जादू इन जरा से कागजों में क्यों है यह रहस्य मैंने मथुरा जाकर समझा। जो कुछ लिखा जाता है वह केवल लेख नहीं होता। एक ब्रह्मनिष्ठ तपस्वी की आत्मा में से निकला हुआ ब्रह्म वर्चस्व कागज के पन्नों में लिपट कर जाता है और पाठकों को प्रभावित करता है। अपने जीवन के छोटे से दिनों में अखंड-ज्योति ने आध्यात्मवाद का—सदाचार का—धर्मनिष्ठा का जितना प्रचार किया है उतना अन्य साधनों से शायद ही हुआ हो। इसका कारण वह ब्रह्मनिष्ठा और तपश्चर्या है जिसे मथुरा जाकर मैंने अपनी आँखों से स्वतः देखा।

ग्यारह दिन का सत्संग बड़ी अच्छी तरह रहा। कितनेक विद्वानों के भाषण सुनने को मिले। दूर दूर प्रान्तों से आये हुए अपने धर्म बन्धुओं से परिचय प्राप्त हुआ। झूलों का उत्सव देखा। प्राचीन ऐतिहासिक स्थान और मन्दिर देखे। शंकाओं का समाधान किया। ज्ञान में पहले की अपेक्षा बहुत वृद्धि हुई। उलझा हुआ मस्तिष्क सुलझा और भी न जाने क्या क्या लाभ हुए, उन लाभों को इन थोड़ी सी पंक्तियों में लिख सकता न तो संभव है और न आवश्यक ही। परन्तु एक सबसे बड़ी वस्तु जो हमें प्राप्त हुई वह है—'प्रेरणा'। अनेक पुस्तकों के पढ़ने और अनेक प्रवचन सुनने पर जो वस्तु कहीं प्राप्त नहीं हुई थी वह केवल दोसप्ताह से भी कम समय में हमें प्राप्त हुई। मन नहीं चाहता था कि ऐसे पुनीत स्थान को छोड़ कर वापिस लौटें परन्तु सांसारिक जिम्मेदारियों के कारण वापिस आना पड़ा। परन्तु हमें सन्तोष है कि खाली हाथ नहीं लौटे। आशा से बहुत अधिक वस्तु लेकर वापिस आये।

घर आकर मैं और पं० विश्वेश्वरदयालुजी अपने २ काम पर लग गये हैं हम लोगों ने अपना व्यापारिक कामकाज शुरू कर दिया है। पहले की तरह ही सब काम काज करते हैं परन्तु अब हमारा दृष्टिकोण दूसरा है। यज्ञ मय भावना से, कर्तव्य कर्म को निस्वार्थ भाव से करते हुए हम दोनों को अपनी साधारण दिनचर्या में बड़ा सन्तोष और सुख मिलता है। राजा जनक आदि कर्मयोगी घर गृहस्थी में रहते हुए, तुलाधार वैश्य साधारण व्यापार करते हुए भी, कबीर जुलाहे का काम करते हुए भी किस प्रकार योगी रह सके होंगे यह बात पहले हमें कठिन और असम्भव दिखाई पड़ती थीं परन्तु अब ऐसा मालूम पड़ता है कि यह बातें सरल और व्यावहारिक हैं। हम दोनों ऐसा ही जीवन बिताने की सोचते हैं, ईश्वर ने चाहा तो हम लोगों की आकांक्षा असफल न रहेगी।

हम लोग हिम्मत करके अपने सच्चे विश्वासों के अनुसार काम करें, चाहे ऐसा करने में भले ही भयंकर भूल करने का खतरा हो।

× × ×

इच्छा शक्ति और सफलता।

(श्री० चन्द्र किशोर जी तिवारी)

किसी कार्य की सफलता के लिए दृढ़ संकल्प की अत्यन्त आवश्यकता है। जिसकी प्रेरणा से मनुष्य कठोर परिश्रम में संलग्न होकर अपने ध्येय को प्राप्त करने तक निष्ठा पूर्वक जुटा रहता है वह संकल्प शक्ति ही है। तीव्र इच्छा होने पर ही किसी कार्य में पूरी शक्ति के साथ लगा जासकता है और पूरी शक्ति के साथ प्रवृत्त होने पर ही सफलता प्राप्त होती है। तात्पर्य यह है कि तीव्र इच्छा— दृढ़ संकल्प ही वह शक्ति है जिसके द्वारा लक्ष को प्राप्त किया जा सकता है।

जिनमें आशा, उत्साह और लालसा नहीं है, जो उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अपनी समस्त इच्छा शक्ति का प्रयोग नहीं कर रहे हैं ऐसे लोगों के लिए छोटे, मामूली और साधारण कामों में भी सफलता मिलना कठिन है। थकी हुई नस नाड़ियों में भी तीव्र इच्छा की बिजली जब कोंधती हैं तो उनमें एक अपूर्व सामर्थ्य जाग पड़ती है इसके विपरीत आशा और उत्साह के अभाव में स्वस्थ और समर्थ शरीर भी निस्तेज होजाता है उसका मन मुर्झाया रहता है। अधूरी शक्ति से काम करने पर अधूरी सफलता की ही आशा की जा सकती है। कभी कभी तो ऐसे अवसर आते हैं कि वह अधूरी सफलता भी हाथ से चली जाती है और भाग्य को दोष देना एवं दुर्भाग्य पर पछताना ही हाथ रह जाता है।

निर्बल इच्छा— जिसके पीछे प्रयत्न का क्रियात्मक कार्यक्रम न हो निरर्थक है। शेखचिल्ली की तरह कल्पना की उड़ानों में उड़ना और पलंग पर पड़े पड़े मनके मोदक खाते रहने से कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। ऐसी निर्बल कल्पनाऐं करते रहने से तो मनुष्य अवास्तविक, संदिग्ध, सनकी और एक प्रकार का मानसिक रोगी होजाता है। हमें अपनी शक्ति, सामर्थ्य, योग्यता, कार्यक्षेत्र और सामयिक परिस्थितियों को देखते हुए अपनी योजनाएं बनानी चाहिए, उनके हानिलाभ, विघ्न बाधा और परिणामों पर गंभीरता पूर्वक विचार करना चाहिए जब विचार विवेचना के पश्चात् किसी निश्चित परिणाम पर पहुँच जाया जाय तो उसे पूरा करने के लिए समस्त इच्छा शक्ति, दृढ़ता, संकल्प आशा और उत्साह के साथ लग जाना चाहिए, तभी सफलता का प्राप्त होना संभव है।

संसार के महा पुरुषों की सफलता पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तो मालूम होता है कि धन, सुविधा या साधनों के कारण वे इतने ऊँचे नहीं बने। गरीबी और बेबसी की दुरबस्था को उनने अपने व्यक्तिगत सद्गुणों के द्वारा पार किया और फिर जीवन संग्राम का मोर्चे पर मोर्चा फतह करते हुए आगे बढ़ गये। तीव्र इच्छा की अलौकिक शक्ति उनकी धमनियों में प्राण संचार करती रही और वे बिना एक क्षण के लिए रुके अपने उद्देश्य पथ पर चलते रहे, आखिर एक दिन उनने सफलता को प्राप्त कर ही लिया।

महात्मा वाक्सटन कहा करते थे कि–"ऐ युवको! तुम अपने भाग्य के स्वयं निर्माता हो, जैसे चाहो वैसे बन सकते हो। जो कुछ प्राप्त करना चाहो कर सकते हो। तीव्र इच्छा करो, अभीष्ट कार्य को पूरा करने की प्रतिज्ञा करो और निश्चित गति से काम में जुटे रहो तो तुम अवश्य ही सफल होकर रहोगे।"

जहां चाह है वहाँ राह मिलेगी। जहां आवश्यकता होगी वहाँ आविष्कार होकर रहेगा। जो खट खटायेगा उसके लिए खोला जायगा। जिसका जिस पर सत्य सनेह है, सो उसे मिलने में कुछ संदेह नहीं समझना चाहिए। इच्छा शक्ति का ऐसा ही चमत्कार पूर्ण महात्म्य है, जो प्राण प्रण से किसी काम में जुट जाता है वह उस कार्य में सफल होकर ही रहता है। इस सत्य को यदि हम हृदयंगम करलें तो समझना चाहिए कि सफलता के संमुख ही खड़े हुए हैं।

———

क्या करूँ ?

(श्री० स्वामी सत्यभक्त जी महाराज, वर्धा)

अगर सफलता पा न सकूं तो दुनियां कहती है नादान ।
विजयी बनूं सफलता पाऊं, तो कहती है धूर्त महान ॥

निंदक भ्रष्ट विरोधीजन को, क्षमा करूँ कहती कमजोर ।
इनको अगर ठिकाने लाऊँ तो कहती निष्करुण कठोर ॥

अगर कष्ट कुछ सहन करूँ तो कहती है 'फैलाता नाम' ।
बचा रहूं यदि व्यर्थ कष्ट से कहती है करता आराम ॥

दान करूँ तो कहने लगती, था कैसा यह संग्रह शील ।
मुँह देखा बातें करता था, करता था सत्पल में ढील ॥

दान न करूं बोलती दुनियाँ, देता है झूठा उपदेश ।
त्याग सिखाता दुनिया भर को, अपने में न त्याग का लेश ॥

अगर फकीर बनूं तो कहती, पेट पूर्ति का खोला द्वार ।
दुनियां से धक्के खाकर अब, बन बैठा सेवक लाचार ॥

अगर रहूं धन से स्वतन्त्र मैं, कहती है भर कर निज पेट ।
त्याग त्याग चिल्लाता रहता, करता भोलों का आखेट ॥

अगर प्रेम से बात करू तो कहती कैसा मायाचार ।
अगर उपेक्षा करूँ जगत से तो कहती मद का अवतार ॥

अगर युक्तियों से समझाऊँ, कहती 'युक्ति तर्क है व्यर्थ ।'
सत्य प्राप्त करने में कैसे होसकती है, युक्ति समर्थ ॥

अगर भावना ही बतलाऊँ, कहती कैसा खुद मुख्तार ।
बिना युक्ति के पागल जैसे, सुन सकता है कौन विचार ॥

यदि सबका मैं करूँ समन्वय, कहती है कैसा बकवाद ।
एक बात का नहीं ठिकाना, देता है खिचड़ी का स्वाद ॥

एक बात दृढ़ता से बोलूं, कहती ढीठ और मुँह ज़ोर ।
सुनता है न किसी की बातें, मचा रहा अपना ही शोर ॥

सोचा बहुत करूँ क्या जिससे, हो इस दुनियां को संतोष ।
सेवा यह स्वीकार करें या नहीं करे पर करे न रोष ॥

सोचा बहुत नहीं पाया पथ, समझा यह सब है बेकार ।
दुनियां को खुश करने का है, यत्न मूर्खता का आगार ।

अरे जन्तु खुद को प्रसन्न कर, जिससे हो प्रसन्न सत्येश ।
बकती है दुनियाँ बकने दे, ढक कर रख तू कान हमेश ॥

सच्चा यश रहता है मनमें, दुनियां की तब क्या पर्वाह
दुनियां का यश छाया सम है, देख नहीं तू उसकी राह ।